और बालकोंका जीवन घर और पाठशालाके संस्कारोंके संघर्षके बीच स्थिर रह सकता है। यही बात बड़ी उम्रके विद्यार्थियोंके विषयमें भी है। प्रत्येक व्यवसायी अथवा गृहस्थ, अपने बचे हुए समय और शक्तिका उपयोग सुसंस्कार ग्रहण करनेमें कर सकता है। इतना ही नहीं उसे वैसा करना भी चाहिए, अन्यथा उसके और उसकी संततिके बीच ऐसी दीवाल खड़ी हो जानेवाली है कि संतति उसे दोष देगी और वह संततिपर दोष मढ़ेगा। ऐसी स्थिति कदापि ठीक नहीं कि संतति कहे कि माता पिता वहमी, जड़, और रूढ़िगामी हैं और माता-पिता कहें कि पढ़े लिखे विद्यार्थी केवल हवामें उड़ते हैं। माता-पिताओं और विद्यार्थियोंके बीचकी खाई अधिक गहरी न हो, इसका रामबाण इलाज माता-पिताओंके ही हाथमें है, और वह इलाज है अपनी समझको शुद्ध करनेका प्रयत्न।

प्रबुद्ध जैन
१५-९-४२ — अनु०—**मोहनलाल मेहता**

धार्मिक शिक्षाका प्रश्न

धार्मिक शिक्षा देना चाहिए या नहीं, इस प्रश्नको लेकर मुख्य रूपसे आमने सामनेके छोरोंपर खड़े हुए दो वर्ग नजर आते हैं। एक वर्ग वह है जो धार्मिक शिक्षा देने दिलानेके लिए बहुत आग्रह करता है जब कि दूसरा वर्ग इस विषयमें उदासीन ही नहीं है अपितु अक्सर विरोध भी करता है। यह स्थिति केवल जैन समाजकी ही नहीं प्रायः सभी समाजोंकी है। हमें देखना चाहिए कि विरोध करनेवाला विरोध क्यों करता है? क्या उसे शिक्षाके प्रति अरुचि है या धर्मके नामसे सिखाई जानेवाली बातोंके प्रति द्वेष है? और इस अरुचि या द्वेषका कारण क्या है? इसी प्रकार धार्मिक शिक्षाके प्रति आग्रह रखनेवाला किस धर्मकी शिक्षाके विषयमें आग्रह रखता है और उस आग्रहके मूलमें क्या है?

विरोध करनेवालेकी शिक्षाके प्रति उतनी ही ममता है जितनी धर्म-शिक्षाके आग्रहीकी। धर्मके प्रति भी उसकी अरुचि नहीं हो सकती, यदि वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनप्रद और मानवतापोषक हो। उसका विरोध धर्मके नामसे सिखाई जानेवाली बातोंके प्रति ही है और उसका कारण है उस प्रकारकी धर्म-शिक्षाके द्वारा मानवताका विकास होनेके बजाय ह्रास होना। दूसरी ओर धार्मिक शिक्षाका आग्रह रखनेवाला मुख्य रूपसे अमुक अमुक पाठ सिखाने और परम्परागत क्रियाकाण्ड सिखानेका ही आग्रह करता है। इस आग्रहके मूलमें उसका खुदका धर्मविषयक जीता जागता अनुभव नहीं होता किन्तु परम्परागत क्रियाकाण्डके जो संस्कार उसे प्राप्त हुए हैं उन संस्कारोंको बनाए रखनेका जो सामाजिक मोह है और उन संस्कारोंको सींचनेके लिए पंडित और धर्मगुरु जो निरन्तर जोर दिया करते हैं वह होता है।

जिस समय विरोधी वर्ग धार्मिक शिक्षाका विरोध करता है उस समय वह इतना तो मानता ही है कि मानव-जीवन उच्च और शुद्ध संस्कारयुक्त होना चाहिए। ऐसे संस्कार कि जिनका सेवन करके मनुष्य निजी और सामाजिक जीवनमें प्रामाणिकता न छोड़े, तुच्छ स्वार्थके लिए समाज और राष्ट्रके विकासको रूद्ध करनेवाला कोई भी काम न करे। जीवन-पोषक एक भी तत्त्व इस वर्गको अमान्य नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि समृद्ध और संस्कारी जीवनके लिए जो आवश्यक शिक्षा है वही इस वर्गकी दृष्टिमें ठीक है। जिस शिक्षाके द्वारा जीवनमें उदात्त संस्कार जमनेकी संभावना शायद ही होती है, उस शिक्षाका विरोध ही उसका विरोध है। इस तरह गहरे उतरकर देखें तो मालूम होगा कि धार्मिक शिक्षाका विरोध करनेवाला वर्ग वास्तवमें धार्मिक शिक्षाकी आवश्यकता स्वीकार करता है। दूसरी ओर इस शिक्षाका बहुत आग्रह रखनेवाला शब्द-पाठ और क्रियाकांडके प्रति चाहे जितना आग्रह रखे, फिर भी जीवनमें उच्च संस्कार-समृद्धि बढ़ती हो या उसका पोषण होता हो तो वह उसे देखनेके लिए उत्सुक रहता है। इस प्रकार आमने सामनेके छोरोंपर खड़े हुए ये दोनों वर्ग उच्च और संस्कारी जीवन बनानेके विषयमें एकमत हैं। एक पक्ष अमुक प्रकारका विरोध करके और दूसरा पक्ष उसका समर्थन करके अन्तमें दोनों नकार और हकारमेंसे एक ही सामान्य तत्त्वपर आकर खड़े हो जाते हैं।

यदि आमने सामनेके दोनों पक्ष किसी एक विषयमें एकमत होते हों, तो उस उभयसम्मत तत्त्वको लक्ष्य करके ही शिक्षाके प्रश्नका विचार करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए और विवादास्पद तत्त्वके विषयमें एकान्तिक विधान या व्यवस्था न करके उसे शिक्षार्थीकी रुचि और विचारपर छोड़ देना चाहिए।

जो लोग धार्मिक पाठ और क्रियाकाण्डके पक्षपाती हैं उन्होंने यदि अपने जीवनसे यह सिद्ध किया होता कि परम्परागत धार्मिक क्रियाकांडका सेवन करनेवाले अपने जीवन-व्यवहारमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सच्चे होते हैं और सादा जीवन व्यतीत कर अपनी चालू धर्म-प्रथा द्वारा मानवताकी अधिक सेवा करते हैं, तो वैसी शिक्षाका विरोध करनेका कोई कारण ही न होता। किन्तु इतिहास इससे विपरीत कहता है। जिस जिस जाति या समाजने रूढ़ धर्मशिक्षा अधिक पाई है, उस जाति या कौमने दूसरी जाति या कौमकी अपेक्षा भेद-भावनाका अधिक पोषण किया है। सबसे अधिक क्रिया-काण्डी शिक्षाका अभिमान रखनेवाली ब्राह्मण या हिन्दू जाति दूसरे समाजोंकी अपेक्षा अधिक भेदोंमें बँट गई है, और अधिक दाम्भिक साथ ही डरपोक बन गई है। ज्यों ज्यों धार्मिक शिक्षा विविध और अधिक हो, त्यों त्यों जीवनकी समृद्धि भी विविध और अधिक होनी चाहिए। किन्तु इतिहास कहता है कि धर्मपरायण मानी जानेवाली जातियाँ धर्मके द्वारा परस्पर जुड़नेके बजाय एक दूसरेसे अलग होती गई हैं। इस्लाम धर्मकी रूढ़ शिक्षाने यदि अमुक वर्गको अमुक अंशमें जोड़ा है तो उससे बड़े वर्गको अनेक अंशोंमें प्रथम वर्गका विरोधी मानकर मानवताको खंडित भी किया है। ईसाई धर्मकी रूढ़ शिक्षाने भी मानवताको खंडित किया है। अमुक धर्म अपने रूढ़ शिक्षणके बलसे यदि अमुक परिमाणमें मानव-वर्गको भीतर ही भीतर जोड़नेका पुण्य करता है तो उससे भी बहुत बड़े वर्गको अपना विरोधी माननेका महापाप भी करता है। यह तो रूढ़ शिक्षा-जन्य मानवताके खंडित होनेकी कथा हुई। यदि सम्प्रदायकी रूढ़ शिक्षा अपने सम्प्रदायके लिए भी सरल, प्रामाणिक और परार्थी जीवन बनानेवाली होती तब भी धार्मिक शिक्षाका विरोध करनेवालेको विरोध करनेका कारण नहीं मिल सकता। किन्तु इतिहास दूसरी ही कथा कहता है। किसी एक सम्प्रदायके प्रधान माने जानेवाले धर्मगुरुओं अथवा मुख्य गृहस्थोंको लेकर विचार करें तो मालूम होगा कि प्रत्येक धर्मगुरु आडम्बरपूर्ण जीवनमें ही रस लेता है और अपने भोले अनुयायियोंके बीच उस आडंबरका धर्मके नामसे पोषण करता है। जिस धन, शक्ति और समयसे उस सम्प्रदायके अनुयायियोंका आरोग्य बढ़ सकता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें शिक्षा दी जा सकती है, उद्योग सिखाकर स्वावलम्बी बनाया जा सकता है, उसी धन, शक्ति और समयका अधिकतर उपयोग प्रत्येक धर्मगुरु अपनी आडंबर-सज्जित जीवन-गाड़ी चलाते रहनेमें किया करता है। स्वयं शरीरश्रम करना छोड़ देता है किन्तु अन्यके श्रमके फलोंका भोग नहीं छोड़ता। स्वयं सेवा करना छोड़ देता है किन्तु सेवा लेना नहीं छोड़ता। बन सके उतना उत्तरदायित्व छोड़ देनेमें धर्म मानता है किन्तु खुदके प्रति दूसरे लोग उत्तरदायित्व न भूलें, इसकी पूरी चिन्ता रखता है। सम्प्रदायके वे रूढ़शिक्षा-रसिक अगुए गृहस्थ, अपने जीवनमें राजाओंके समान असदाचारी होते हैं, मनमाना भोग करते हैं और चाहे जितनोंको वंचित करके कमसे कम श्रमसे अधिकसे अधिक पूँजी एकत्र करनेका प्रयत्न करते हैं। जब तक अनुकूल परिस्थितियाँ होती हैं तब तक तो व्यवसायमें प्रामाणिकता रखते हैं किन्तु जरा-सी जोखिम आ पड़नेपर टाट उलट देते हैं। ऐसी परिस्थितिमें चाहे जितना जोर लगाया जाय किन्तु रूढ़ धर्म-शिक्षाके विषयमें स्वतंत्र और निर्भय विचारक आन्तरिक और बाह्य विरोध रखेंगे ही। यदि वस्तुस्थिति ऐसी है और ऐसी ही रहनेकी है, तो अधिक सुन्दर और सुरक्षित मार्ग यह है कि जो उभय-पक्ष-सम्मत हो उसी धर्मतत्त्वकी शिक्षाका प्रबन्ध सावधानीसे किया जाय।

धर्मतत्त्वमें मुख्य रूपसे दो अंश होते हैं, एक आचारका और दूसरा विचारका। जहाँ तक आचरणकी शिक्षाका संबंध है, निरपवाद एक ही विधान संभव हो सकता है और वह यह कि यदि किसीको सदाचरणकी शिक्षा देना हो तो वह सदाचारमय जीवनसे ही दी जा सकती है, केवल वाणीसे नहीं दी जा सकती। सदाचरण वस्तु ही ऐसी है कि वह वाणीमें उतरते ही फीकी पड़ जाती है। यदि वह किसीके जीवनमें अन्तस्तलसे उदित हुई हो, तो दूसरेको किसी न किसी अंशमें प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती। इसका अर्थ यह हुआ कि मानवताका पोषण करनेवाले जिस प्रकारके सदाचारको समाजमें दाखिल करना हो, जब तक उस प्रकारका सदाचारी व्यक्ति कोई न मिले तब तक उस समाज या संस्थामें सदाचारकी शिक्षाके प्रश्नको हाथमें लेना निरी मूर्खता है। माता पिता या अन्य लोग बालकोंके जीवनका जैसा निर्माण करना चाहते हों, उन्हें अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनको वैसा ही बनाना चाहिए और यदि वे ऐसा नहीं कर सकते हों तो उन्हें अपनी संततिके जीवनमें सदाचरण लानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। कोई भी संस्था किरायेके नकली शिक्षक रखकर विद्यार्थियोंमें सदाचारका वातावरण उत्पन्न नहीं कर सकती। यह व्यवहारका विषय है और व्यवहार सच्चा या झूठा देखादेखीमेंसे उत्पन्न होनेके बाद ही विचारके या संस्कारके गहरे प्रदेश तक अपनी जड़ें पहुँचाता है।

धर्म-शिक्षाका दूसरा अंश विचार है—ज्ञान है। कोई भी संस्था अपने विद्यार्थियोंमें विचार और ज्ञानके अंश सिंचित और पोषित कर सकती है। इस तरह प्रत्येक संस्थाके लिए राजमार्गके रूपमें धार्मिक शिक्षाका एक ही विषय बाकी रहता है और वह है ज्ञान तथा विचारका।

इस अंशके लिए संस्था जितना उदात्त प्रबंध करेगी उतनी सफलता अवश्य मिलेगी। प्रत्येक विद्यार्थीको जाननेकी कम या अधिक भूख होती ही है। उसकी भूखकी नाड़ी यदि ठीक ठीक परख ली जाय तो वह विशेष तेज भी की जा सकती है। इसलिए विद्यार्थियोंमें विविध प्रकारसे तत्त्व-जिज्ञासा पैदा करनेका आयोजन करना संस्थाका प्रथम कर्तव्य है। इस आयोजनमें समृद्ध पुस्तकालय और विचारपूर्ण विविध विषयोंपर व्याख्यानोंका प्रबंध आवश्यक है। साथ ही सम्पूर्ण आयोजनका केन्द्र ज्ञान और विचारमूर्ति शिक्षक और उसकी सर्वग्राहिणी और प्रतिक्षण नवनवताका अनुभव करनेवाली दृष्टि भी चाहिए। जो संस्था ऐसे शिक्षकको प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त करती है उस संस्थामें ऐसी धर्मशिक्षा अनिवार्य रूपसे फैलेगी और बढ़ेगी ही, जो विचार करनेके लिए काफी होती है। करनेकी बात आनेपर विद्यार्थी जरा-सा कष्टका अनुभव करता है किन्तु जाननेका प्रश्न सामने आनेपर उसका मस्तिष्क अनुकूल शिक्षकके सन्निधानमें जिज्ञासाको लिए हुए हमेशा तैयार रहता है। प्रतिभाशाली अध्यापक ऐसे अवसरसे लाभ उठाता है और विद्यार्थीमें उदार तथा व्यापक विचारोंके बीजोंका वपन करता है। संस्थाएँ धार्मिक शिक्षाका आयोजन करके भी वास्तवमें जो विद्यार्थीके लिए करना चाहिए, उस कार्यको पूर्ण नहीं करतीं और जिस धार्मिक कहे जानेवाले अंशमें विद्यार्थीको अथवा स्वयं शिक्षकको रस नहीं होता उस अंशपर परम्पराके मोहके कारण अथवा अमुक वर्गके अनुसरणके कारण भार देकर दोनों चीजें खो देती हैं। शक्य विचारांशकी जागृतिमें बाधा पहुँचती है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या रुकावट खड़ी होती है और अशक्य रूढ़ आचारोंमें रसवृत्ति उत्पन्न होनेके बजाय हमेशाके लिए उनसे अरुचि हो जाती है। मेरी दृष्टिसे प्रत्येक संस्थामें उपस्थित होनेवाले धार्मिक शिक्षाके प्रश्नका हल यह हो सकता है—

(१) प्रत्येक क्रियाकाण्डी अथवा रूढ़ शिक्षा ऐच्छिक हो, अनिवार्य नहीं।

(२) जीवनके सौरभके समान सदाचरणकी शिक्षा शब्दोंसे देनेमें ही सन्तोष नहीं मानना चाहिए और ऐसी शिक्षाकी सुविधा न हो, तो उस विषयमें मौन रहकर ही सन्तोष करना चाहिए।

(३) ऐतिहासिक तुलनात्मक दृष्टिसे धर्मतत्त्वके मूलभूत सिद्धान्तोंकी शिक्षाका विद्यार्थियोंकी योग्यताके अनुसार श्रेष्ठतम प्रबंध होना चाहिए। जिस विषयमें किसीका मतभेद न हो, जिसका प्रबंध संस्था कर सकती हो और जो भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंकी मान्यताओंको मिलानेमें सहायक तथा उपयोगी हो और साथ ही साथ मिथ्या भ्रमोंका नाश करनेवाली हो वही शिक्षा संस्थाओंके लिए उपयोगी हो सकती है।

अनु०—**मोहनलाल मेहता**

विद्याकी चार भूमिकाएँ *

भाइयो और बहनो,

आप लोगोंके सम्मुख बोलते समय यदि मैं प्रत्येक व्यक्तिका चेहरा देख सकता या शब्द सुनकर भी सबको पहचान सकता तो मुझे बड़ा सुभीता होता।

सुपद्धतिसे अथवा वैज्ञानिक ढंगसे काम करनेकी जैसी शिक्षा आपको मिली है, वैसी मुझे नहीं मिली, इसलिए मुझे बिना शिक्षाके इधर-उधर भटकते हुए जो मार्ग दिखाई दे गया, उसीके विषयमें कुछ कहना है। जिस व्यक्तिने अन्य मार्ग देखा ही न हो और जो पगडंडी मिल गई उसीसे जंगल पार किया हो वह केवल अपनी पगडंडीका ही वर्णन कर सकता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि दूसरी पगडण्डियाँ हैं ही नहीं, अथवा हैं तो उससे घटिया या हीन हैं। दूसरी पगडंडियाँ उससे भी श्रेष्ठ हो सकती हैं। फिर

* गुजरातविद्यासभाकी अनुस्नातक विद्यार्थी-सभाके अध्यापकों और छात्रोंके समक्ष १९४७ के पहले सत्रमें दिया हुआ मंगल प्रवचन।—'बुद्धिप्रकाश' से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org